© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा के उद्देश्य

डॉ. विजय कुमार चतुर्वेदी
(अस्सिटेन्ट प्रोफेसर बी.एड. विभाग)
मड़ियाहूँ पी.जी. कालेज मड़ियाहूँ,
जौनपुर (उ0प्र0)

सभी राष्ट्र अपनी सामाजिक स्थिति एवं शैक्षिक व्यवस्था के अनुरूप अपने शैक्षिक उद्देश्यों को निर्धारित करता है। क्योंकि शिक्षा के उद्देश्यों से ही समस्त शैक्षिक प्रक्रिया को लक्ष्य की प्राप्ति होती हे। आज देश के परिवर्तित होते स्वरूप में भारतीय शिक्षा पद्धति और शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण में विचार प्रस्तुत करने की आवश्यकता की अनुभूति हो रही है। वर्तमान में शिक्षा का उद्देश्य ऐसा होना चाहिए जिससे मनुष्य के मन मस्तिष्क में ज्ञान की प्राप्ति की अभिलाषा अत्यन्त तीव्रतम् हो। जिससे मनुष्य की आकांक्षाओं को नये अर्थ में उसे सकारात्मक परिणाम की तरफ अग्रसर हो सकें। शिक्षा में पाठ्यक्रमों के निर्धारण एवं निर्माण जैसी क्रिया का समयानुरूप सम्पादन एवं क्रियान्वयन समयानुरूप अनिवार्यता से लागू किया जाना चाहिए। सशक्त उद्देश्य के बिना शैक्षिक पद्धति दिशा–विहीन एवं यन्त्रवत् हो जाती है।

उद्देश्यों के निर्धारक तत्व :–

उदीयमान भारतीय समाज ने अपनी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के अनुरूप अपनी शैक्षिक प्रणाली का गठन किया है। उदीयमान भारतीय समाज के शैक्षिक उद्देश्यों को कई दृष्टिकोणों से निर्धारित किया जा सकता है। शिक्षा के सामान्य एवं विशिष्ट उद्देश्यों के अन्तर्गत शैक्षिक क्रियाओं को आयोजित करने के सम्बन्ध में अत्यनत सामान्य दिशा–निर्देश निर्धारित किया जाना चाहिए। इसके अन्तर्गत छात्र के मनोदैहिक आध्यत्मिक एवं सामाजिक शक्ति को विकसित करना चाहिए। छात्रों में भावनात्मक एकता विकसित करने के साथ–साथ सामाजिक संवेदनशीलता का विकास करना चाहिए, इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय अवबोध की जागृति तथा समाज एवं राष्ट्र की उत्पादन शक्ति विकसित करने के साथ ही साथ छात्रों में चरित्र निर्माण किया जाना चाहिए।

गाँधी जी का कहना है कि यदि शिक्षा उत्तम चरित्र का निर्माण नहीं कर सकती तो उस साक्षरता की शिक्षा का कोई महत्व नहीं है।[1] उन्होंने अपने शिक्षा के उद्देश्य के निर्धारण में कहा कि जब शरीर को हाथ, पैर, आँख, कान, नाक इत्यादि के अच्छे तरीके से कसरत एवं शिक्षा मिले तभी बुद्धि का उत्तम और त्वरित विकास हो सकता है। अतः उसके हाथ, पैर, आँख, कान इत्यादि के गुणों का ज्ञान पूर्णरूपेण कराया जाये।[2]

इन सारी चीजों का पूर्णतः ज्ञान तथा संकुचित उपयोग समाज में तभी सम्भव है जब नैतिक एवं चारित्रिक विकास के अत्यधिक महत्व दिया जाये। एक प्रसिद्ध आदर्शवादी शिक्षा की समस्या केवल एक शब्द नैतिकता के

अन्तर्गत है। ज्ञान की उपयोगिता केवल चरित्र निर्माण से होती है। इसलिये साक्षरता की अपेक्षा चरित्र निर्माण सदैव महत्वपूर्ण है। साहस, शान्ति, परोपकार, दृढ़ता, प्रेम और सहानुभूति आदि अनेक मानवीय गुणों के विकास को पुस्तकीय शिक्षा से कहीं अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। इसलिये साक्षरता की अपेक्षा चरित्र निर्माण सदैव महत्वपूर्ण है। साहस, शान्ति, परोपकार, दृढ़ता, प्रेम और सहानुभूति आदि अनेक मानवीय गुणों के विकास को पुस्तकीय शिक्षा से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। इसलिये समस्त ज्ञान का उद्देश्य चरित्र निर्माण होना चाहिये। क्योंकि चरित्र के बिना शिक्षा पवित्रता के बिना चरित्र व्यर्थ है।

कार्यपरख शिक्षा की संकल्पना के उद्देश्य के अन्तर्गत यह कहा जा सकता है ईश्वर ने मानव को शरीर एवं मस्तिष्क दोनों दिये हैं। जिससे किवह दोनों पक्षों का विकास कर सकें तथा संयुक्त शक्ति का प्रयोग कर शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा राष्ट्र की सेवा करें। प्राचीन ऋषियों मुनियों का कहना है कि ''बुद्धि कर्मानुसारिणी'' अर्थात् बुद्धि कर्म की अनुगामिनी है। कार्य करने से बुद्धि का विकास होता है और बुद्धि के विकास से कार्यकुशलता आती है। ज्ञान और धर्म का एक दूसरे से अन्योन्यश्रित सम्बन्ध है अतः श्रम और बुद्धि का जहाँ प्रयोग होता है। वह कार्यपरख शिक्षा है।

भारतीय संस्कृति का एक सूत्र वाक्य प्रचलित है तमसो मा ज्योतिर्गमय इसका अर्थ है अँधेरे से उजाले की ओर जाना। इस प्रक्रिया को वास्तविक अर्थों में पूरा करने के लिए शिक्षा, शिक्षक और समाज तीनों की बड़ी भूमिका होती है। भारतीय समाज शिक्षा और संस्कृति के मामले में प्राचीनकाल से बहुत समृद्ध रहा है। भारतीय समाज में शिक्षा के शरीर, मन और आत्मा के विकास का साधन माना गया है, वहीं शिक्षक को समाज के समग्र व्यक्तित्व के विकास का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। कार्यपरख शिक्षा की संकल्पना तपोवनों में की गयी।

मनुस्मृति में यह कहा गया है कि–

यथाशन–धनित्रेण नरोवार्यधिगच्छति।

तथा गुरूगतां विद्यां शुश्रुषुरभि गच्छति।।[3]

जिस तरह फावड़े से जमीन खोदता हुआ मानव जल की प्राप्ति कर लेता है।उसी तरह से गुरू की सेवा करता हुआ शिष्य गुरू के पास रहने वाली विद्या की भी प्राप्ति कर लेता है।

उदीयमान भारतीय शिक्षा भारतीय सभ्यता के इतिहास से भी जड़ा है। भारतीय समाज के विकास और उसमें होने वाले परिवर्तनों की रूपरेखा में हम शिक्षा के स्थान और उसकी भूमिका के निरन्तर विकासशील पाते हैं। महर्षि अरविन्द ने एक बार शिक्षकों के सम्बन्ध में कहा था कि ''शिक्षक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं। वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और अपने श्रम से सींचकर उन्हें शक्ति में निर्मित करते हैं।'' महर्षि अरविन्द का मानना था कि किसी राष्ट्र के वास्तविक निर्माता उस देश के शिक्षक होते हैं। इस प्रकार एक विकसित, समृद्ध एवम् हर्षित राष्ट्र व विश्व के निर्माण में शिक्षकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

शिक्षा का केन्द्रीय घटक विद्यार्थी होता है और उन्हें सही दिशा निर्देशन करने वाला प्रमुख घटक शिक्षक होता है। शिक्षा के अनेक उद्देश्यों की पूर्ति शिक्षकों के माध्यम से ही होती है।

इसमें संदेह नहीं कि शिक्षक भी आम आदमी है। अतः समान्य व्यक्ति की जो विशेषतायें हैं वही शिक्षकीय व्यक्तित्व में भी दृष्टिगोचर होती हैं, परन्तु कुछ विशेषताएं ऐसी हैं जो शिक्षक को सामान्य जन से पृथक करती हैं। भारतीय समाज के शिक्षकों में संवेदनशीलता, आत्मीयता, सहृदयता, ममतामयीता, परदुःखकातरता, मानवतावादी वृत्ति, प्रवीणता, परिवर्तनवादिता एंव विषयज्ञान पर असाधारण प्रभुत्व आदि गुण होते हैं। इनकी सहायता से वह समाज में मान–सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। समाज भी अपने नौनिहालों के भविष्य के निर्माण का वजन शिक्षकों के कन्धों पर डालकर निश्चिन्त हो जाता है लेकिन कहीं न कहीं वह शिक्षकों के प्रति अपने दायित्वों को भूल जाता है। शिक्षक अभिभाव पारिवारिक उलझनों और समाज की उदासीनता के बावजूद भी अपने दायित्वों एवं कार्यों के प्रति प्रमाणिक रहने का प्रयास करते रहते हैं।

शिक्षा का उद्देश्य जीविकोपार्जन भी होना चाहिए गाँधी जी के अनुसार आध्यात्मिक, बौद्धिक और आर्थिक इन तीनों का का एक साथ विकास ही सच्ची शिक्षा है। छात्र की शिक्षा तो छात्र की आजीविका का एक बीमा होना चाहिए, ऐसा ना हो कि विद्यालय या स्कूल से निकलने के उपरान्त छात्र को ''अब मैं क्या करूँ'' ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़े। अनेक शैक्षिक उद्देश्य केवल आय प्राप्त करना नहीं बल्कि देश सेवा के प्रति समर्पित होना तथा उत्तम बनना से सम्बन्धित होना चाहिए। गाँधी जी के अनुसार– ''जिस शिक्षा के माध्यम से जीवन से सम्बन्धित रोटी, कपड़ा एवं मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति न हो वह बिना काम की है।[4]

अतः शिक्षा का उद्देश्य आत्मनिर्भरता एवं जीविकोपार्जन की योग्यता रखना भी होना चाहिए।

गाँधी जी का कहना था कि शिक्षा की उपयोगिता व्यक्ति को स्वावलम्बी बनाने की क्षमता पर निर्भर करेगी।[5]

शिक्षा के सर्वोच्च उद्देश्य के अन्तर्गत आत्मनुभूति का ज्ञान करना है। शिक्षा वही है जिसमें मनुष्य अपने आत्मा के, परमात्मा के, सत्य को पहचान सकें।

इस पहचान के लिये किसी को साहित्य के ज्ञान की परन्तु शिक्षा के द्वारा आत्मदर्शन ही मात्र प्रमुख उद्देश्य होना चाहिये।

जब मनुष्य को पदार्थ, जीव, आत्मा, ईश्वर का सही व संशय रहित ज्ञान होता है उस समय उसके 'दुःख का उद्देश्य' हो जाता है। अतः शिक्षा का लक्ष्य आत्यन्तिक दुःखनिवृत्तिः भी माना गया है।

गौतम सूत्र में वर्णित है–

''दुःख–जन्म–प्रवृत्ति दोष मिथ्या ज्ञानामुत्तशेत्तरादाये तदनन्तरापायापवर्गः''[6]

वैशेशिक दर्शन के अनुसार विद्या दोशरहित ज्ञान है।

''इंद्रियदोषात् संस्कारदोषाच्चा विद्या।''[7]

अतः वैशेषिक दर्शन के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य 'निर्मल ज्ञान' और अनुभव उपलब्ध करने का प्रयत्न है, जो शुद्ध, बुद्धि, मन और आत्मा के द्वारा संभव है।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है एंव तत्व ज्ञान ही मोक्ष का साधन है। मोक्ष अर्थात् निःश्रेयस।

'तत्वज्ञानन्निश्रेयसम्'

गाँधी जी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के हाथ, मस्तिष्क और हृदय का विकास करना है। गाँधी जी के अनुसार –''शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य के मन एवं आत्मा के उच्चतम् विकास से है।''[8]

हरिजन में गाँधी जी ने लिखा– ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय है– बच्चे व व्यक्ति के शरीर, मस्तिष्क व आत्मा में विद्यमान 'श्रेष्ठ तत्व' का प्रकटीकरण व चहुमूखी विकास करना।''[9]

जिद्दू कृष्णमूर्ति ने शिक्षा के उद्देश्यों में जीवन के आधारभूत तत्व 'प्रेम' को खोजा है। प्रथम एवं अन्तिम मुक्ति में वे लिखते हैं–

'जब प्रेम होता है, जो कि उसकी स्वयं अपने में चिरन्तनता है, तो ईश्वर की खोज नहीं होती, क्योंकि प्रेम ही ईश्वर है।''

इनकी दृष्टि में जो प्रेम नहीं करते वे जीवन के प्रयोजन ढूँढ़ते हैं। यह प्रेम 'स्वच्छ दर्पण'' का प्रतीक है। यह 'मन' कि उस अवस्था का प्रतीक है जहाँ आपसी ईर्ष्या, द्वेष, संघर्ष, असंवेदनशीलता, कटुता, लालच आदि नहीं रह जाता। अतः शिक्षा का उद्देश्य बच्चों में जीवन के आधारभूत तत्व 'प्रेम' का उद्भव भी होना चाहिये।

इस प्रकार उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण में शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, आर्थिक, सामाजिक, राष्ट्रिक, वैश्विक एवं आध्यात्मिक उदेश्यों के सभी के समाहित करने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. यंग इण्डिया, 1 जून, 1921।
2. हरिजन, 8 मार्च 1937।
3. मनुस्मृति 2/218।
4. गुजराती इण्डियन गोपिनियन (09.03.2017)।
5. मिश्र, आत्मानन्द (उद्धति) गाँधी शिक्षा दर्शन, पृ0सं0 32।
6. गौतम सूत्र 1/12।
7. वैशेषिक सूत्र 9:2:10 ।
8. ''गाँधी विचार दोहन'' किशोरीलाल मशूरवाला, पृ0 151।
9. हरिजन, 31.7.1937।